धूतपापेश्वर

आरोग्यमंदिर

पत्रिका

जुलाई २०१७

AROGYAMANDIR PATRIKA

कार्श्य विकार विशेषांक

संपादकीय

मार्च २००८ के आरोग्यमंदिर पत्रिका में हमनें मेदोरोग (मोटापा) इस विषय की चर्चा की थी, क्योंकि उस समय वैद्यों की माँग थी कि मेदोरोग के रुग्ण अत्यधिक प्रमाण में चिकित्सा हेतु आ रहे हैं और इसलिए उसकी चर्चा उस समय की गई थी। आज एक दशक बाद मोटापा की समस्या बरकरार रहते हुअे कार्श्य की समस्या न केवल उभर रही है, बल्कि अत्यधिक प्रमाण में बढ रही हैं। ऐसी परिस्थिति में आयुर्वेद चिकित्सकों के पास 'कार्श्य' की चिकित्सा करवाते व्यक्तियों की भरमार रहती है। अत्यधिक अमीरी में पलनेवालों के घरों में भी आज कार्श्य दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में कार्श्य के बारे में चिंतन आवश्यक हो गया है ऐसा कह सकते हैं और इसी उद्देश्य से इस बार **'कृशस्य भाव: कार्श्य:'** इस विषय पर चर्चा कर रहे हैं।

इस आरोग्यमंदिर पत्रिका में कार्श्य की सर्वांगीण जानकारी देने की कोशिश की गई है और वह भी केवल इसलिए कि आज समाज में कृश होने की और कृश बने रहने की होडसी लगी हुअी है। कोई एक आदमी जो अपने फायदे के लिए या और किसी वजह से 'झीरो फिगर' बनाने में लगता है, वह हमेशाही ना झीरो फिगर का था ना ही हमेशा के लिए झीरो फिगर का हुआ है। कोई भी व्यक्ति किसी भी वजहसे कुछ भी करे, उसीका अंधानुकरण नहीं किया जाना चाहिए यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है तथा आम आदमी के हित में है, यह ध्यान में रखना अतिमहत्वपूर्ण है।

आपका विनीत,

वैद्य शैलेश नाडकर्णी

विषय प्रवेश

प्राय: हम व्यक्ति के शरीरसौष्ठव की ओर देखकर बताने की कोशिश करते हैं कि यह व्यक्ति स्थूल है या कृश और कृश व्यक्ति देखकर निष्कर्षपर पहुँच जाते हैं कि वह कार्य करने में सक्षम है या नहीं। लेकिन क्या हर व्यक्ति जो उपचित दिखता है वह सचमुचही कार्यक्षम रहता है और तौलनिक दृष्ट्या दिखने में अल्प उपचित दिखता है वह कार्यक्षम नहीं रहता? आज विविध पद्धतियों से अपने शरीर अवयवों को पुष्ट दिखने हेतु अनेकानेक प्रकार की दवाईयाँ, कसरत के अलग अलग प्रकार प्रचलित हो चुके हैं। लेकिन क्या इन सबसे कृश व्यक्ति सचमुचही कृशता त्याग सकती है? अगर ऐसा होता तो क्या हर व्यक्ति जब चाहे, अपना सौष्ठव नहीं बदलता? प्रत्यक्षत: जो व्यक्ति जैसा है वैसाही रहता है – आयुष्य के मध्य में कुछ प्रमाण में मांसोपचय दिख सकता है लेकिन स्वयं की मूल प्रवृत्ति के अनुसार रहना ही उचित होता है – न अतिस्थूल होना, न अतिकृश होना ही आवश्यक समझा जाना चाहिए।

परिचय

सुश्रुताचार्यजी के अनुसार,

गूढसन्धिसिरास्नायु: संहताङ्ग: स्थिरेन्द्रिय: ।
उत्तरोत्तरसुक्षेत्रो य: स दीर्घायुरुच्यते।।

सु. सू. ३५/५-६

अर्थात् जिस मनुष्य की संधियाँ, सिरा एवं स्नायु मांस की अधिकता होने से ढके हुए हो, अंग संहत अर्थात् गठीला हो, सभी इन्द्रिय स्थिर हो वह 'दीर्घायु' कहलाता है। जिस व्यक्ति में **सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो नर:। दृढेन्द्रियो विकाराणां न बलेनाभिभूयते।** च.सू. २१/१८ अर्थात् मांस का प्रमाण सम, शरीरावयव सुडौल एवं दृढ है, वह पुरुष प्रशंसनीय होता है। वह किसी भी प्रकार के रोग का सामना करने में समर्थ होता है। साथ ही इन व्यक्तियों में मांसपेशियों का गठन योग्य प्रकार का होने से भूख, प्यास, उष्णता (धूप/गर्मी), शीतल वातावरण एवं व्यायाम को अच्छी तरह से सहन कर पाता है। उसकी जाठराग्नि सम होने से उसके द्वारा सेवन किया हुआ आहार उचित रुप से पचता है। (च. सू. २१/१९)

परंतु आज के समय केवल स्थौल्य ही एक समस्या नहीं है, बल्कि अतिकार्श्य होना भी एक समस्या है। अतिस्थूल व्यक्ति की तरह ही अतिकृश व्यक्ति भी टीका को प्राप्त होते हैं। सुश्रुताचार्यजी के अनुसार भी **अत्यन्तगर्हितावेतौ सदा स्थूलकृशौ नरो। श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु कृश: स्थूलात्तु पूजित:।** सु.सू. १५/४२ अर्थात् अधिक स्थूल एवं अधिक कृश मनुष्य अति निन्दनीय माना जाता है। चरकाचार्यजीने भी अष्टौनिन्दितीय अध्याय में आठ प्रकार के निन्दित पुरुषों का वर्णन किया है। (च. सू. २१/३) अतिकृश उसमें से एक है। अतिकृश व्यक्तियों में कार्यक्षमता एवं व्याधिक्षमत्व भी कम हो सकता है। इन व्यक्तियों में शारीरिक बल एवं व्याधिक्षमत्व कम होने के कारण विभिन्न प्रकार के विकार बार-बार उत्पन्न हो सकते हैं।

व्युत्पत्ति –

कृश् इस मूल धातु को प्यञ् यह प्रत्यय लगाने से कृश शब्द तयार होता है। (संस्कृत शब्दकोश – आपटे) कृश का अर्थ कृश् – कृश्यति अर्थात् कृश, दुर्बल या क्षीण होता है।

प्रीणनं जीवनं लेप: स्नेहो धारणपूरणे । अ. हृ. सू. ११/४ इस सूत्र के अनुसार मांस धातु का कार्य लेपन अर्थात् अस्थि, संधि एवं धमनियों पर लेपन करना है। साथ ही मेदोधातु स्नेहन अर्थात् संपूर्ण शरीर को स्निग्ध बनाए रखने का कार्य करता है। मांस एवं मेदोधातु के

कारण नितंब, उदर, उर, ग्रीवा, कपोल, बाहु एवं उरु आदि को विशिष्ट आकार प्राप्त होता है। इन धातुओं के क्षय के कारण यह अवयव शुष्क हो जाते हैं। केवल त्वचा एवं अस्थिपंजर स्पष्ट रुप से दिखाई देने से धमनियाँ त्वचापर उभरकर दिखाई देती हैं। संधि स्थूल दिखाई देते हैं तथा चेहरा बडा दिखाई देता है। इस अवस्था को 'कार्श्य' कहा जाता है।

स्वामला

- रसायन कार्य से रसादि सप्तधातुओं का पोषण करे
- बल्य कार्य से शारीरिक एवं मानसिक बल बढाए
- व्याधिप्रतिकारक्षमता बढाने में उपयुक्त
- शरीर में चुस्ती एवं फूर्ति बढाए
- अग्निप्रदीपन करने में उपयुक्त
- जीर्ण व्याधि पश्चात् उत्पन्न दौर्बल्य दूर करने में उपयुक्त

हेतु –

प्राणा: प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति।
वर्ण: प्रसाद: सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्।।
तुष्टि: पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्। च. सू. २७/३४९

चरकाचार्यजीने इस सूत्र में किए वर्णन के अनुसार अन्न सभी प्राणियों का प्राण है। अत: लोक (समस्त प्राणिवर्ग) अन्न की ओर दौडता है अर्थात् अन्न प्राप्त करने की कोशिश करता है। वर्ण, चित्त की प्रसन्नता, स्वर, जीवन, प्रतिभा अर्थात् व्यक्तित्व, शारीरिक सुख, मानसिक संतोष, शारीरिक पुष्टि, बल एवं मेधा यह सभी अन्न पर निर्भर है। साथ ही चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय २५/४० में किए **अन्नं वृत्तिकराणां (श्रेष्ठम्)।** इस वर्णन के अनुसार भी जीवन बनाए रखने में अर्थात् जीवन का यापन करने में अन्न श्रेष्ठ है। इसलिए मनुष्य को योग्य तरह से जीवित रहने के लिए उचित प्रमाण में एवं उचित समय पर योग्य आहार सेवन करना आवश्यक होता है। मनुष्य बिना आहार सेवन किए शरीर बल, प्रकृति एवं देहभार के आधारपर लगभग तीन सप्ताह तक ही जीवित रहने की संभावना होती है। इस आहार का सेवन **काले भुक्तं समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृध्दये।** च.सू. १५/७ अर्थात् योग्य समय पर करने से उसका शरीरस्थ सभी तेरह अग्निद्वारा योग्य पचन होने पर मनुष्य की आयु बढने में सहायता होती है, यह चरकाचार्यजीने स्पष्ट किया है। इसलिए योग्य समय पर अन्नसेवन करना आवश्यक होता है। अष्टांग संग्रह में वर्णित **वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यदिगा: क्रमात्।** अ.हृ.सू. १/८ इस सूत्रानुसार दिन का विभजन वातज काल, पित्तज काल एवं कफज काल में किया जा सकता है। अन्न के पचन का उचित काल पित्तज काल अर्थात् पित्त के प्राकृत प्रकोप का काल होता है। इसलिए इसी समय सेवन किए हुए आहार का आमाशय एवं पक्वाशय में सुयोग्य पचन होता है। साधारणत: दिन का मध्य भाग अर्थात् सुबह १० से दोपहर २ बजे तक का काल पित्तज काल होने से इसी समय दिन में आहार सेवन करना उचित होता है। जब तक बाह्य अग्नि अर्थात् सूर्य की उष्णता वातावरण में रहती है, तब तक शरीर में भी अग्नि प्रज्वलित रहती है। इसलिए साधारणत: सूर्यास्त के पश्चात् आहार सेवन करना उचित नहीं होता है। फिर भी साधारणत: श्याम को ७ बजे से ९ बजे तक लघु आहार सेवन किया जा सकता है। इस काल के व्यतिरिक्त सेवन किया हुआ आहार अतीतकाल भोजन होता है। प्राकृत् काल में कफ आमाशय में उदीरित होने से अन्न का क्लेदन होता है। योग्य तरह से कफ का उदीरण न होने पर आहार का क्लेदन ठीक तरह से नहीं हो पाता। इस वजह से पांचभौतिक आहार में उपस्थित महाभूतों का विघटन योग्य तरह से न होने पर आहार रस योग्य तरह से निर्माण नहीं होता।

तत्राहारप्रसादाख्यो रस:। च. सू. २८/४ इस सूत्र के अनुसार आहार के प्रसाद भाग से रस की उत्पत्ति होती है। जिसके द्वारा उत्तरोत्तर धातु तथा संपूर्ण शरीर का पोषण होने में मदद होती है। आहारप्रसादजन्य रस शरीर को प्रसन्न तथा तर्पित करता है एवं शरीर बल बढाने में सहायता करता है। इसलिए आहार शरीर के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साथ ही सेवन किए आहार के पचन हेतु जाठराग्नि प्रदीप्त रहना भी आवश्यक होता है। अष्टांग हृदय चिकित्सास्थान १०/८० में वर्णित **नाभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नातिभोजनात्। यथा निरिन्धनो वह्निरल्पो वाऽतीन्धनावृत:।।** इस सूत्र के अनुसार आहार सेवन न करने अथवा अधिक आहार सेवन करने से जाठराग्नि उसी प्रकार प्रदीप्त नहीं रहती, जिस प्रकार बाहरी अग्नि लकडी के न रहने से अथवा लकडियों से अधिक ढक जाने से प्रदीप्त नहीं रह पाती है। इस प्रकार से जाठराग्नि प्रदीप्त न रहने के कारण तथा आहार का पचन योग्य प्रकार से न होने से उचित आहाररस उत्पन्न नहीं होता। इस वजह से शरीर का पोषण योग्य प्रकार से न होने के कारण कार्श्य उत्पन्न होता है।

सुश्रुताचार्यजीने **रसनिमित्तमेव स्थौल्यं कार्श्यं च।** सु. सू. १५/३७ इस सूत्र में किए वर्णन के अनुसार भी आहाररस के कारण ही स्थूलता तथा कृशता उत्पन्न होती है। इसलिए आहाररस योग्य तरह से उत्पन्न न होने पर भी कार्श्य उत्पन्न होता है। केवल योग्य समय पर योग्य मात्रा में आहार सेवन न करने से ही आहार का पचन योग्य तरह से नहीं होता है, बल्कि **मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति। चिन्ताशोकभयक्रोधदु:खशय्याप्रजागरै:।।** च.वि. २/९ अर्थात् उचित मात्रा में सेवन किया हुआ पथ्यकर आहार चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, दु:खशय्या (ऊबड – खाबड बिस्तर) एवं रात्रि जागरण इन कारणों से योग्य तरह से न पचने के कारण भी कार्श्य उत्पन्न होता है। साथ ही चरकाचार्यजी द्वारा वर्णित **एकरसाभ्यासो दौर्बल्यकराणां (श्रेष्ठम्)।** च.सू. २५/४० इस सूत्र के अनुसार किसी एक ही रस का निरन्तर सेवन करने से दौर्बल्य उत्पन्न होता है। इसलिए आहार में सभी प्रकार के रसों का समावेश करना आवश्यक होता है। अन्यथा कार्श्य उत्पन्न होता है।

आहाररस योग्य तरह से उत्पन्न होने पर रसधातु की निर्मिति होती है। यह रसधातु शीघ्र न पचनेवाले अर्थात् गुरु, स्पर्श एवं वीर्य में शीत, अतिस्निग्ध एवं अतिमात्रा में आहार सेवन करने से तथा चिंता से दूषित हो जाता है। जिसका वर्णन चरकाचार्यजीने निम्नलिखित सूत्रद्वारा किया है –

गुरुशीतमतिस्निग्धमतिमात्रं समश्नताम्।
सवाहीनि दुष्यन्ति चिन्त्यानां चातिचिन्तनात्।।
च.वि. ५/१३

साथ ही इन कारणों से रसादि धातुओं का उत्तरोत्तर क्षय होने की संभावना होती है। परिणामस्वरुप मांस धातु एवं मेद धातु का क्षय होने लगता है। जिससे कार्श्य उत्पन्न हो सकता है। मांस धातु क्षय के कारण स्फिक् (नितम्ब प्रदेश), कपोल, ओष्ठ, जननेन्द्रिय, उरु, पिण्डिका, उदर एवं ग्रीवा यह स्थान शुष्क हो जाते हैं। सु.सू. १५/१३ (मेदक्षय में भी यही लक्षण दिखाई देते हैं।)

भावप्रकाशकारने अध्याय ४०/१ में निम्नलिखित सूत्रद्वारा कार्श्य के हेतुओं का वर्णन किया है –

वातो रुक्षान्नपानानि लङ्घनं प्रमिताशनम्।
क्रियाऽतियोग: शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रह:।।

नित्यं रोगी रतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता।

भीतिर्धनादिचिन्ता च कार्श्यकारणमीरितम् ।। भा.प्र. ४०/१-२

१. रुक्ष अन्न – उदा. यव, मूँग, राजमाष, मटकी, चना, मटर, ककडी आदि।

२. रुक्ष पान – उदा. स्नेहरहित यूष, रुक्ष मद्य उदा. माध्विक आदि का सेवन करना।

३. लंघन – अर्थात् आहार सेवन न करना या किसी कारण भूखा रहना।

४. प्रमिताशन – अर्थात् अल्प मात्रा में आहार सेवन करना। एक रस का ही नित्य सेवन करना। अतीत काल भोजन अर्थात भोजन का काल व्यतीत होने के पश्चात् भोजन करना।

५. क्रियातियोग – अर्थात् अतिव्यायाम, अतिव्यवाय, अध्यशन, वमनादि शोधन कर्मों का अतियोग।

६. वेगनिद्राविनिग्रह – निद्रा वेगावरोध अर्थात् रात्रि जागरण से वातप्रकोप होता है। क्षुधा वेगनिग्रह करने से धातु पोषण योग्य तरह से नहीं होता है। तृष्णा वेगनिग्रह से शरीर जलीयांश कम होता है।

७. जो सतत रोगी रहता है।

इन सभी कारणों से कार्श्य उत्पन्न होता है।

उसी तरह चरकाचार्यजीने भी कार्श्य के निदान का वर्णन च. सू. २१/१०-१२ में निम्नप्रकार से किया है –

सेवा रुक्षान्नपानानां लङ्घनं प्रमिताशनम्।

क्रियातियोग: शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रह:।।

रुक्षस्योद्वर्तनं स्नानस्याभ्यास: प्रकृतिर्जरा।

विकारानुशय: क्रोध: कुर्वन्त्यतिकृशं नरम्। च.सू. २१/१०-१५

१. रुक्ष भोजन तथा पेय का निरन्तर सेवन करना।

२. लंघन अर्थात् आहार सेवन न करना।

शतावरी कल्प

- उत्तम गर्भपोषण कार्य करे
- रस से लेकर शुक्रधातु का पोषण करने में उपयुक्त
- स्तन्यजनन एवं शुक्रल कार्य करे
- शारीरिक बल बढाए
- रसक्षय से उत्पन्न मानसिक चिडचिडापन कम करे

३. व्यायामादि क्रियाओं का अतियोग करना।

४. मल- मूत्र आदि वेगों को धारण करना।

५. शरीर रुक्ष रहने पर भी उद्वर्तन का प्रयोग करना।

६. रुक्ष शरीर अर्थात् तेल से मालिश किए बिना प्रतिदिन स्नान करना।

७. मनुष्य रुक्ष अर्थात् वात प्रकृति का होना।

८. कृश माता – पिता से जन्म होना।

९. स्वभाव के अनुसार क्रोध अधिक आना।

इन सभी कारणों से कार्श्य अधिक प्रमाण में उत्पन्न होता है।

रुक्ष अन्न – पानों का निरन्तर सेवन करते रहने से मांस, मेद एवं वसा आदि की पुष्टि नहीं हो पाती है। इसलिए मनुष्य शरीर की पुष्टि न होने के कारण कार्श्य उत्पन्न होता है।

जिसप्रकार से बीजस्वभावात् के कारण अतिस्थूल उत्पन्न हो सकता है, उसी प्रकार से माता – पिता की देह प्रकृति के अनुसार जन्मसे कार्श्य उत्पन्न हो सकता है।

सुश्रुताचार्यजी के अनुसार भी वातवर्धक द्रव्य उदा. मटकी, चना, छोले, बाजरा आदि, अतिव्यायाम, अतिमैथुन, रात्रि जागरण, तृष्णा, क्षुधा, कषाय रस एवं अल्प मात्रा में भोजन आदि कारणों से रस धातु का उपशोषण होता है। इस रसधातु द्वारा शरीर का पोषण योग्य तरह से न होने के कारण शरीर पुष्टि नहीं होती है। परिणामस्वरुप मनुष्य अत्यन्त कृश हो जाता है।

वृद्धावस्था में रस – रक्तादि धातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य एवं उत्साह धीरे – धीरे क्षीण हो जाते हैं। त्वचा में परुषता, त्वचा का फटना एवं त्वचा का मुरझा जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। साथ ही वृद्धावस्था में मांस धातु क्षय होने के कारण स्फिक् (नितम्ब प्रदेश), ग्रीवा, उदर की मांसपेशियाँ, ओष्ठ एवं पिण्डिका आदि में शुष्कता निर्माण होती है। (सु. सू. ३५/३६)

विविध कारणों से अर्थात् रुक्ष आहार – विहार, रात्रि जागरण, अति चंक्रमण, अतिव्यायाम, अतिव्यवाय एवं अतिचिंता आदि कारणों से वातवृद्धि होने पर भी शरीर में कार्श्य उत्पन्न होता है। – (अ. हृ. सू. ११/५-६)

मानसिक हेतु –

बार – बार शोकाकुल रहना एवं भय, चिंता आदि कारणों से वात का प्रकोप होता है। भूख कम लगती है। शरीर में रुक्षता बढती है। परिणाम स्वरुप कार्श्य उत्पन्न होता है। साथ ही अतिचिंता, निद्रानाश या अल्प निद्रा के कारण शरीर में वात प्रकोप के साथ – साथ पित्त प्रकोप के लक्षण भी दिखाई देते हैं। इस वजह से सेवन किए हुए आहार का परिपाक योग्य तरह से न होने कारण रसादि धातुओं का क्षय होता है, इसीकी परिणती आगे जाकर कार्श्य में होती है। बार-बार क्रोध उत्पन्न होना यह भी पित्त प्रकोपक मानस भाव है, जिसके कारण पित्त का उष्णत्व बढकर धातुओं का शोषण हो सकता है।

मानस: पुनरिष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते।। च. सू. ११/४५ इस सूत्र के अनुसार इष्ट अर्थात् इच्छित पदार्थ या वस्तु के न मिलने एवं अनिष्ट पदार्थ या वस्तु के मिलने से अत्यंत वातप्रकोप होता है। जिसके कारण मानस रोग उत्पन्न होने के साथ ही साथ कार्श्य भी उत्पन्न हो सकता है।

सन्तर्पण एवं अपतर्पण –

जो मनुष्य स्निग्ध, मधुर, गुरु, पिच्छिल, आनूप मांस, दूध एवं दही आदि का अतिमात्रा में सेवन करता है। साथ ही शारीरिक परिश्रम से द्वेष अर्थात् अधिक आराम, दिन में सोना एवं सतत बैठे रहना आदि कर्म करता है। उन व्यक्तियों में कफ, मेद एवं वसा की वृद्धि होने से स्थौल्य जैसे सन्तर्पणजन्य विकार उत्पन्न होते हैं।

इसीके विपरीत कारणों से अपतर्पण निर्माण होता है। उदा. रुक्ष पदार्थों से अपतर्पण होता है। अति अपतर्पण के कारण कार्श्य उत्पन्न होता है। अपतर्पण से शरीर अग्नि, वर्ण, ओज एवं शुक्रक्षय होता है। पार्श्वशूल, अरुचि, श्रोत्र दौर्बल्य अर्थात् सुनने में दुर्बलता आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। साथ ही हृदय में पीडा, मल – मूत्र संग, पर्वास्थि – संधि – जंघा – उरु एवं त्रिक् प्रदेश में शूल आदि लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त अपतर्पण के कारण विभिन्न वातविकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। अपतर्पण के कारण रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा एवं शुक्र सप्तधातुओं का क्षय होने लगता है। विशेषत: रसधातु, मांसधातु, मेदोधातु एवं शुक्रधातु पर अधिक परिणाम दिखाई देता है।

संप्राप्ति –

१. अतिरुक्ष आहार सेवन, अतिव्यायाम, अतिमैथुन, अधिक अध्ययन, भय, शोक, चिंता, रात्रि जागरण, भूख, तृष्णा, अतिकषाय रस एवं अल्प भोजन आदि कारणों से रसधातु का उपशोषण हो जाता है। रसधातु का क्षय होने से शरीर का पोषण योग्य तरह से नहीं हो पाता है, जिसके परिणामस्वरुप कार्श्य उत्पन्न हो सकता है।

अश्वगंधारिष्ट

- धात्वग्नि प्रदीपन कर धातुपोषण क्रिया सुधारे
- मानसिक एवं शारीरिक दौर्बल्य दूर करे
- मांसधातुपोषक होने से कार्श्य में उपयुक्त
- रसायन एवं वाजीकरण होने से शुक्रक्षय में लाभदायक
- मूर्च्छा, भ्रम एवं अनिद्रा में भी उपयुक्त

२. रसधातु सगर्भावस्था से लेकर मृत्यु तक शरीर का पोषण करता है। सगर्भावस्था में इसे 'तर्पण' कहा जाता है। गर्भिणी अवस्था में माता ने अल्प मात्रा में आहार सेवन करने पर गर्भ को योग्य तरह से आहाररस प्राप्त नहीं हो पाता। परिणामस्वरुप गर्भ का पोषण योग्य तरह से नहीं हो सकता है। गर्भ सूख जाता है। इसके कारण जन्मत: कार्श्य उत्पन्न हो सकता है। इसका वर्णन चरकाचार्यजीने निम्नलिखित सूत्रद्वारा किया है–

प्रमिताशनसेविन्या गर्भो म्रियतेऽन्त: कुक्षे:, अकाले वा स्रंसते, शोषी वा भवति।
च. शा. ८/२१

३. कम मात्रा में आहार सेवन करने से रसधातु, मांसधातु एवं मेदोधातु का क्षय होने से कार्श्य उत्पन्न हो सकता है। जाठराग्नि एवं धात्वग्नि विकृति तथा वायु विकृति के कारण आहार का पचन योग्य तरह से न होने से कार्श्य उत्पन्न हो सकता है।

४. अभिष्यन्दी उदा. दही जैसे पदार्थ एवं पचने में गुरु आहार का सेवन तथा दिन में सोने से मांसवह स्रोतस् दुष्टि होती है। (च. वि. ५/१५) व्यायाम न करने से, दिन में सोने से, अधिक मात्रा में मेदोवर्धक पदार्थ उदा. घी, पनीर आदि का सेवन करने से मेदोवह स्रोतस् दुष्टि होती है। इस प्रकार से मांसवह एवं मेदोवह स्रोतस् दुष्टि होने के कारण मांस एवं मेद विकृति उत्पन्न होती है। परिणाम स्वरुप कार्श्य उत्पन्न होता है।

साथ ही कफक्षय, अधिक मात्रा में रक्तस्राव, हस्तमैथुन, अति व्यवायादि कारणों से शुक्रस्राव एवं पुरीषादि मलों की अतिप्रवृत्ति के कारण भी धातुक्षय होता है। अतिशुक्रस्राव से प्रतिलोम गति से धातु शोष होता है।

५. रसधात्वग्निमांद्य के कारण रसशेषाजीर्ण उत्पन्न हो सकता है, जिसके कारण मलरुप कफ की अधिक निर्मिति होती है। यह कफ रसवह स्रोतस् में अवरोध उत्पन्न करता है। परिणामत: रक्तादि धातुओं का पोषण योग्य तरह से नहीं होता है, जिसके कारण कार्श्य उत्पन्न हो सकता है।

६. वृद्धावस्था में स्वभावत: रसादि धातुओं का उत्तरोत्तर क्षय होने लगता है। इसलिए वृद्धावस्था में मनुष्य सामान्यत: कृश होने लगता है। साथ ही रसधातु का यापन कर्म योग्य तरह से नहीं हुआ तो व्यक्ति अधिक कृश होती है।

कार्श्य लक्षण –

शुष्कस्फिगुदरग्रीवो धमनीजालसन्तत:।
त्वगस्थिशेषोऽतिकृश: स्थूलपर्वा नरो मत:।। च. सू. २१/१५

उपरोक्त सूत्र में अतिकृश के लक्षणों का वर्णन किया है। अतिकृश व्यक्तियों में स्फिक्, उदर एवं ग्रीवा जैसे शरीरावयव पतले हो जाते हैं। मनुष्य की त्वचा पतली होने से धमनियों का जाल संपूर्ण शरीर पर उभरकर दिखाई देता हैं। केवल त्वचा एवं अस्थियों का पंजर दिखाई देता है। मांस एवं मेद का क्षय होने से पर्व स्थूल दिखाई देते हैं।

अतिकार्श्य के दोष –

चरकाचार्यजीने सूत्रस्थान के २१ वें अष्टौनिन्दितीयाध्याय में अतिकार्श्य के दोषों का वर्णन किया है–

व्यायाममतिसौहित्यं क्षुत्पिपासामयौषधम्।
कृशो न सहते तद्वदतिशीतोष्णमैथुनम्।
प्लीहा कास: क्षय: श्वासो गुल्मोऽर्शांस्युदराणि च।
कृशं प्रायोऽभिधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीगता:।।
च.सू.२१/१३–१४

अतिकृश व्यक्ति व्यायाम करने में असमर्थ होता है। व्यक्ति एक ही समय में न अधिक मात्रा में आहार सेवन कर सकता है, न अधिक समय तक भूख एवं तृष्णा का अवरोध कर सकता है। कोई भी व्याधि या तीक्ष्ण औषधि अतिकृश व्यक्ति की अवस्था को और अधिक कष्टदायक बनाती है। साथ ही मनुष्य अतिउष्ण, अतिशीत एवं अतिमैथुन को सहन नहीं कर पाता। अतिकृश व्यक्तियों में सामान्यत: प्लीहा, कास, क्षय, श्वास, गुल्म, अर्श, उदर एवं ग्रहणी आदि व्याधि उत्पन्न होते हैं। यह सारे ही बलक्षय के कारण उत्पन्न होनेवाले विकार हैं। इसके साथ ही सुश्रुताचार्यजी के अनुसार अतिकृश व्यक्ति अधिक भार नहीं उठा सकता है, तथा उसमें वातरोग उत्पन्न होते हैं। अतिकृश व्यक्ति की श्वास, कास, शोष, प्लीहा, उदर, अग्निमांद्य, गुल्म एवं रक्तपित्त इनमें से किसी भी एक व्याधि से मृत्यु हो सकती है। साथ ही

सर्व एव चास्य रोगा बलवन्तो भवन्त्यल्पप्राणत्वात्। सु.सू.१५/३९ इस सूत्र में सुश्रुताचार्यजीने किए वर्णन के अनुसार अतिकृश व्यक्ति में उत्पन्न व्याधि और बढ जाती है। इसकी वजह अतिकृश व्यक्ति में 'अल्प प्राणत्व' रहता है।

अतिकृश का बलत्व –

चरकाचार्यजीने अष्टौनिन्दित के वर्गीकरण में अतिकृश का वर्णन अंतिम स्थान में किया है। इस वर्गीकरण में साध्यता उत्तरोत्तर बढ जाती है। साथ ही चिकित्सा के दृष्टिकोण से अतिस्थूल एवं अतिकृश व्यक्ति अधिक निन्दित हैं।

इसलिए यह स्पष्ट होता है कि अन्य सात निन्दित विशेषत: अतिस्थूल की तुलना में 'अतिकृश' की अवस्था चिकित्सा साध्य है। इसका वर्णन निम्नलिखित सूत्रद्वारा किया है–

स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्य समोपकरणौ हि तौ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत् स्थूलमेवातिपीडयेत् ।।

च. सू. २१/१७

शिशुभरण रस

- बालकों की पाचनशक्ति बढाने में उपयुक्त
- बालकों में व्याधिक्षमत्व बढाए
- बल्य होने के साथ – साथ बालक के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास में लाभदायक
- बालक के मांसधातु एवं अस्थिधातु का उचित पोषण कर बल दे
- बालकों में उत्पन्न दौर्बल्य दूर करे

चरकाचार्यजीने अतिकार्श्य एवं अतिस्थौल्य का वर्णन अष्टौनिन्दित में करने के बावजूद भी अतिस्थूल की तुलना में अतिकृश बेहतर होता है, ऐसा वर्णन किया है। अतिस्थूल एवं अतिकृश व्यक्ति किसी भी व्याधि से ग्रस्त होनेपर तथा चिकित्सा के अनेक उपाय उपलब्ध होने के बावजूद अतिकृश की अपेक्षा स्थूल व्यक्ति अधिक पीडित होता है।

सुश्रुताचार्यजी के अनुसार स्थूल एवं कृश के बलत्व एवं अबलत्व का परीक्षण स्थिरत्व एवं व्यायाम बल के अनुसार करना चाहिए। इसका वर्णन निम्नलिखित सूत्र में किया है, जिसमें वह कहते हैं,

केचित् कृशा: प्राणवन्त: स्थूलाश्चल्पबला नरा:।
तस्मात् स्थिरत्वव्यायामैर्बलं वैद्य: प्रतर्कयेत्।। सु.सू. २५/४

यह देखा जाता है कि, कृश व्यक्ति दुबला दिखने के बावजूद भी बलवान होता है, जबकि स्थूल व्यक्ति मोटा होने के बावजूद भी अल्प बलवाला होता है।

भावप्रकाशकारने इसका वर्णन कार्श्याधिकार में निम्नलिखित सूत्रद्वारा किया है,

आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत्।
मेदोभागस्तु हीन: स्यात्स कृशोऽपि महाबल:।।
मेदसस्त्वधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत्।
स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते।।

भा.प्र. ४०/५–६ कार्श्याधिकार

मेद की तुलना में शुक्र प्रबल होनेपर कृश व्यक्ति बलवान होती है। गर्भाधान के समय शुक्र की तुलना में मेद भाग अधिक होनेपर स्थूल व्यक्ति बलहीन बनती है। प्रत्यक्ष में भी हम यह देख सकते हैं।

कार्श्य के परिणाम –

– दौर्बल्य
– भारक्षय
– थकान
– मानसिक समस्या
– अल्प व्याधिक्षमता के कारण व्याधि संक्रमण की संभावना
– देर से व्रण भरना
– अस्थियों का बल कम होना
– हृदय, फुफ्फुस एवं अन्नवह संस्थान के कार्य में विकृति

पूर्वोक्त वर्णित हेतुओं का सेवन करने से कार्श्य उत्पन्न हो सकता है। साथ ही कार्श्य अन्य व्याधियों से संबंधित भी दिखाई दे सकता है। वह हैं –

अ. क्र.	व्याधि	संदर्भ
१.	वातज मूर्च्छा	च. सू. २४/३६
२.	वातज उन्माद	च. नि. ७/७, च. चि. ९/१०
३.	कफज कृमि एवं पुरीषज कृमि	च. वि. ७/१२
४.	क्षतक्षीण	च. चि. ११/६५
५.	उदर एवं प्लीहोदर	च. चि. १३/२१
६.	अर्श	च. चि. १४/२१
७.	वातज ग्रहणी	च. चि. १५/६२
८.	पक्वाशयगत विष	च. चि. २३/११५
९.	अरजस्का योनिव्यापद्	च. चि. ३०/१७

क्षुधा वेग विधारण करने पर कालान्तर से कार्श्य उत्पन्न हो सकता है। रात में योग्य मात्रा में निद्रा न लेनेवाले व्यक्तियों में भी कार्श्य उत्पन्न हो सकता है। शारीरिक अवस्था जैसे की गर्भिणी विशेषत: पांचवे महीने में कृश बन सकती है। (च.शा. ४/२१)

राजयक्ष्मा, मधुमेह, कैंसर, आंत्रशोथ, दीर्घकालीन व्याधि जैसे की एचआईवी/एड्स, क्रोहन डिसीज (Crohn's disease or untreated coeliac disease), हाइपर थायरॉडिजम आदि से संबंधित भी कार्श्य दिखाई दे सकता है।

कार्श्य इनमें से किसी भी एक प्रकार से उत्पन्न हो सकता है –

अनुलोम – रसधातु से लेकर शुक्रधातु तक

प्रतिलोम – शुक्रधातु से लेकर रसधातु तक

कार्श्य शरीरस्थ घटकों के क्षय से भी संबंधित हो सकता है। इसका वर्णन चरकाचार्यजी ने निम्नलिखित सूत्रद्वारा किया है–

कफशोणितशुक्राणां मलानां अतिवर्तनम्।
कालोभूतोपघातश्च ज्ञातव्या: क्षयहेतव:।। च.सू. १७/७७

कफक्षय, रक्तस्राव, शुक्रस्राव, पुरीषादि मलों की अतिप्रवृत्ति, काल (वार्धक्य, आदानकाल), भूतोपघात आदि कारणों से कार्श्य उत्पन्न होता है। वातवृद्धि यह भी कार्श्य का एक महत्त्वपूर्ण हेतु है। (अ.ह.सू. ११/५)

कार्श्य परिमाण –

– आयुर्वेद में शरीर अवयवों का मापन करने के लिए 'अंगुलि परिमाण' प्रयुक्त किया जाता है। इसलिए कार्श्य के पहले एवं बाद में अंगुलि परिमाण में भेद देखा जा सकता है। कार्श्य में पर्वस्थान के मेद एवं मांस मे क्षय होने के कारण पहले की तुलना में अंगुलि परिमाण बढ जाता है।

– प्रकृति परीक्षण – वात प्रकृति व्यक्ति जन्म से ही कृश होता है।

– मांसक्षय एवं मेदोक्षय के लक्षण कार्श्य का निदान करने में सहायक साबित होते हैं।

सुवर्ण वसंत मालती

- धात्वग्निवर्धन एवं धातुपरिपोषण सुधारने में लाभकर
- व्याधिप्रतिकारक्षमता बढाने में उपयुक्त
- शारीरिक बल बढाने में लाभदायक
- धात्वग्निमांद्य से उत्पन्न कृशता दूर करे
- दीर्घकालीन व्याधि के कारण उत्पन्न धातुक्षय में उपयुक्त

मांस सार	मेद सार	मांसक्षय	मेदोक्षय
शंख, ललाट, कृकाटिका, अक्षि, गण्ड, हनु, ग्रीवा, स्कन्ध, उदर, कक्षा, वक्ष, पाणि, पाद, संधि यह स्थिर, गुरु एवं उपचित होते हैं।	वर्ण, स्वर, नेत्र, केश, लोम, नख, दन्त, ओष्ठ, मूत्र, पुरीष स्निग्ध होते हैं।	१. स्फिक्, ग्रीवा, उदर शुष्कता २. स्फिक् – गण्ड – ओष्ठ – उपस्थ – उरु – वक्ष – कक्षा – पिण्डिका – उदर – ग्रीवा शुष्कता, रौक्ष्य, गात्रसाद, धमनी शैथिल्य	१. आयास, तनुत्वम् उदरस्य २. संधि – शून्यता, रौक्ष्य

आधुनिक शास्त्र के अनुसार कुपोषण के परिमाण –

– बॉडी मास इंडेक्स (BMI) = kg/m^2

– विगत ३ से ६ महिनों में बिना किसी वजह से १० % से अधिक भारक्षय होना या बॉडी मास इंडेक्स (BMI) 20 kg/m^2 से कम होने के साथ विगत ३ से ६ महिनों में बिना किसी वजह से ५% से अधिक भारक्षय होना।

बाहु मध्य परिणाह (Mid Upper Arm Circumference - MUAC)

I) MUAC < 125 mm> 110 mm

II) MUAC < 110 mm या उभयपाद शोथ

कुपोषण एवं संक्रामक विकार –

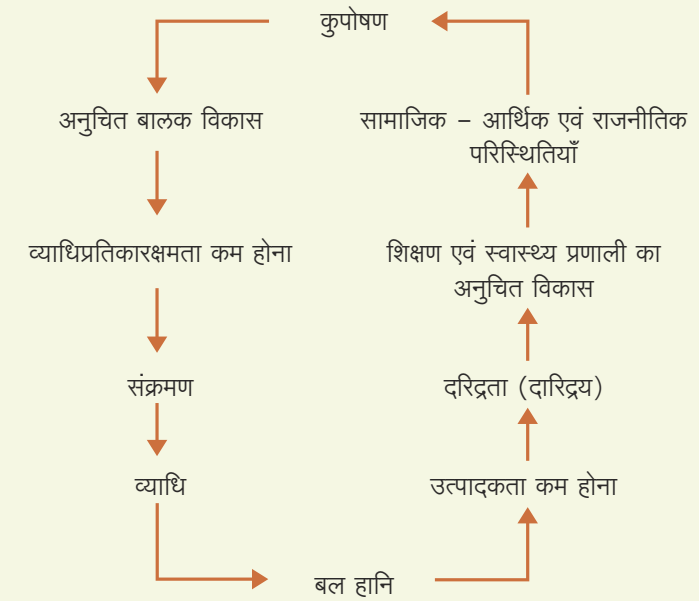

कुपोषण / संक्रामक चक्र –

अपर्याप्त मात्रा में आहार सेवन

क्षुधामांद्य
पोषक तत्त्वों की हानि
विकृत शोषण
चयापचय में बदलाव

भार क्षय
विकास हानि
व्याधिप्रतिकारक्षमता में कमी
म्यूकोसा क्षति

व्याधि – संभावना
– तीव्रता
– काल

अभ्रलोह टेबलेट्स

- रस – रक्त धात्वग्नि सुधारे
- रक्ताणु वृद्धि में मदद करे
- पाण्डु से उत्पन्न दौर्बल्य दूर करने में उपयुक्त
- मानसिक क्षोभ कम करे

चिकित्सा –

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।
ऱ्हासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्यस्तु।। च.सू. १/४४

कार्श्य में शरीर धातुओं का विशेषत: मांस एवं मेदो धातु का क्षय होता है। सामान्य विशेष सिद्धान्त के अनुसार शरीर के किसी भी घटक के क्षय की पुन:पूर्ति उसके समान गुण, कार्य एवं रचनात्मक द्रव्यों से की जा सकती है।

इसलिए चरकाचार्यजीने अतिकृश के लिए बार–बार बृंहण चिकित्सा करने की सलाह दी है। इसका वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है,

सततं व्याधितावेतावतिस्थूलकृशौ नरौ।
सततं चोपचर्यौ हि कर्शनैर्बृंहणैरपि।।
च.सू. २१/१६

अतिस्थूल एवं अतिकृश व्यक्ति प्राय: किसी ना किसी व्याधि से पीडित रहते हैं। इसलिए उन्हें हमेशा एवं नियमित संबंधित चिकित्सा करनी चाहिए। उदा. अतिस्थूल को कर्षण एवं अतिकृश को बृंहण चिकित्सा करनी चाहिए।

साथ ही चरकाचार्यजीने बृंहण लघु एवं संतर्पण के रुप में करने की सलाह दी है। इसका वर्णन निम्नप्रकार से किया है,

कृशानां बृंहणार्थं च लघु सन्तर्पणं च यत्।। च.सू. २१/२०

यहाँ पर लाघव गुण के कारण लघुतर्पण अग्निवर्धन में सहायता करता है। साथ ही संतर्पण कार्य से पोषण में मदद करता है। परंतु, गुरु एवं संतर्पण का प्रयोग योग्य संस्कार के पश्चात् किया जा सकता है।

बृंहण – बृंहण की व्याख्या निम्नलिखित सूत्र में वर्णित की है,

बृंहत्वं यच्छरीरस्य जनयेत् तद्ध बृंहणम्।। च.सू. २२/९

जो द्रव्य शरीर में बृंहत्व उत्पन्न करते हैं, उन्हें 'बृंहण द्रव्य' कहा जाता है। बृंहण द्रव्य के गुण इसप्रकार हैं–

गुरु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं स्थूलपिच्छिलम्।।
प्रायो मन्दं स्थिरं श्लक्ष्णं द्रव्यं बृंहणमुच्यते। च.सू. २२/१३–१४

बृंहण द्रव्य प्राय: गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल, स्थूल, पिच्छिल, मंद, स्थिर एवं श्लक्ष्ण गुणात्मक होते हैं।

इसलिए जो कुछ भी बृंहण है, चाहे वो आहार हो या विहार, अतिकृश व्यक्ति को देने की सलाह दी जाती है।

सामान्यत: चिकित्सा तीन प्रकार से की जाती है–

– आहार

– विहार

– औषध

अतिकृश के लिए आहार –

कृश व्यक्ति को लघु संतर्पण के रुप में बृंहण द्रव्य देने की सलाह दी जाती है।

चरकाचार्यजीने अतिकृश व्यक्ति के आहार में नवनिर्मित धान्य का समावेश करने की सलाह दी है।

वह हैं, –

नवान्नानि नवं मद्यं ग्राम्यानूपौदका रसा:।
संस्कृतानि च मांसानि दधि सर्पि: पयांसि वा।।
इक्षव: शालयो माषा गोधूमा गुडवैकृतम्।
च.सू. २१/३०–३१

सामान्यत: नवनिर्मित धान्य का तुरंत प्रयोग नहीं करना चाहिए। परंतु, अतिकृश में वह गुरु गुणात्मक होने के कारण योग्य संस्कार के पश्चात् लघु बनाकर देने की सलाह दी जाती है। भावप्रकाशकार ने नवनिर्मित धान्य के गुणों का वर्णन निम्नप्रकार से किया है,

धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम्। भा.प्र. धान्यवर्ग ८८

अतिकृश व्यक्ति को नवनिर्मित धान्य एवं संधान कल्प देने चाहिए। साथ ही आहार में ग्राम्य, आनूप एवं औदक प्राणियों के मांस से बनाए गए मांसरस का प्रयोग किया जा सकता है। संस्कारित मांसरस का प्रयोग किया जा सकता है। प्राणी निरोगी एवं तरुण होना चाहिए तथा विषारी शस्त्र से उसका मृत्यु नहीं हुआ है, यह देखना चाहिए।

आहार में दूध, दही एवं घी का प्रयोग करना चाहिए। इक्षु, शाली चावल, उडद, गेहूँ एवं गुड से निर्मित आहार का प्रयोग किया जा सकता है।

विहार –

योग्य निद्रा, प्रसन्न मन एवं योग्य सुखशय्या अतिकृश व्यक्ति का भार बढाने में सहायक होते हैं। व्यक्तिने अतिचिंता, अतिमैथुन एवं अतिव्यायाम नहीं करना चाहिए। खुद को

शांत रखना चाहिए। मन प्रसन्न करने के लिए अपने प्रिय व्यक्ति को मिलना उचित होता हैं। स्नान के पश्चात् स्निग्ध उद्वर्तन का प्रयोग किया जा सकता है। अतिकृश व्यक्तियों ने विशेषत: सुगन्धित फुलों का हार एवं सफेद कपडों का प्रयोग करना चाहिए।

कुल मिलाकर वात को दूषित न करनेवाली या न बढानेवाली क्रियाएँ अतिकृश व्यक्ति की चिकित्सा के लिए फायदेमंद होती है।

औषधी –

१) चरकाचार्यजीने चिकित्सा का वर्णन निम्नलिखित सूत्रद्वारा किया है,

..... यथाकालं दोषाणामवसेचनम्।।
रसायनानां वृष्याणां योगानामुपसेवनम्। च.सू. २१/३२–३३

चरकाचार्यजीने संचित दोष का निर्हरण अर्थात् योग्य काल में दोषावसेचन करने का निर्देश किया है। उदा. कफ दोष निर्हरण के लिए वसंत ऋतु में वमन करने की सलाह दी है। शरद ऋतु में पित्त के लिए विरेचन तथा वर्षा ऋतु में वात दोष के लिए बस्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

द्राक्षोविन स्पेशल

- जाठराग्नि बढाए
- आहार का सुयोग्य पाचन करे
- शारीरिक एवं मानसिक दौर्बल्य दूर करे
- धातुक्षय दूर करने में सहायता करे
- अन्नद्वेष एवं आध्मान जैसे लक्षणों से राहत दे

२. रसायन एवं वृष्य योगों का प्रयोग भी किया जा सकता है। वृद्धावस्था तथा दौर्बल्य रोकने हेतु रसायन द्रव्यों का प्रयोग उपयुक्त साबित होता है। इनमें से कुछ रसायन योग पिप्पली वर्धमान रसायन, शिलाजित रसायन एवं सबसे महत्त्वपूर्ण च्यवनप्राश है।

३. अतिकृश की चिकित्सा में विशेषत: बस्ति प्रयोग करने का वर्णन किया है। **बस्तय: स्निग्धमधुरास्तैलाभ्यङ्गश्च सर्वदा।** च.सू. २१/३१

इस सूत्र के अनुसार स्निग्ध, मधुर रसात्मक तैल से निर्मित बस्ति एवं अभ्यंग अतिकृश की चिकित्सा में उपयुक्त साबित होता है। भावप्रकाश संहिता में अभ्यंग हेतु अश्वगंधा तैल का प्रयोग वर्णित किया है। साथ ही अभ्यंग हेतु माष तैल का प्रयोग भी किया जा सकता है।

४. क्षीरिणी, राजक्षवक, अश्वगंधा, काकोली, क्षीरकाकोली, वाट्यायनी, भद्रौदनी, भारद्वाजी, पयस्या एवं ऋष्यगन्धा यह बृंहणीय महाकषाय में उपस्थित घटक द्रव्य हैं। बृंहण हेतु इन द्रव्यों का उचित प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। इनमें से सभी द्रव्य आज – कल उपलब्ध नहीं होते हैं। लेकिन, जो उपलब्ध होते हैं, उनका प्रयोग करना चाहिए।

५. साथ ही इसमें सुश्रुताचार्यजीद्वारा वर्णित काकोल्यादि गण भी उपयुक्त है। काकोल्यादि गण में काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, अमृता, कर्कटश्रृंगी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, श्वेत कमल, ऋद्धि, वृद्धि, द्राक्षा, जीवन्ती एवं यष्टीमधु आदि द्रव्य उपस्थित हैं।

६. कार्श्य में भारवृद्धि हेतु द्राक्षासव एवं अश्वगंधारिष्ट जैसे ग्रंथोक्त कल्पों का प्रयोग किया जा सकता है। यह अग्निदीपन के लिए भी सहायक होते हैं।

७. सुवर्ण (स्वर्ण) भस्म अपने रसायन कर्म से उपयुक्त साबित होता है।

८. शतावरी कल्प सप्तधातुपोषक होने से प्रतिदिन कोष्ण दूध के साथ प्रयुक्त करने पर उत्तम लाभ देता है। इसका प्रयोग बच्चों से लेकर बुढों तक तथा पुरुष एवं स्त्रियों में किया जा सकता है।

धातुपौष्टिक चूर्ण

- धातुपोषण कर कार्श्य में उपयुक्त
- बल्य होने से शारीरिक बल बढाने में लाभकर
- रस से लेकर शुक्रधातु के पोषण में उपयुक्त
- मांसधातु का पोषण कर कार्श्य में लाभदायक

९. स्वामला, द्राक्षोविन स्पेशल जैसे योग कार्श्य में बृंहण कर्म करने हेतु सहायक होते हैं।

चरकाचार्यजीने सारांश रुप से कार्श्य चिकित्सा का वर्णन निम्नप्रकार से किया है,

अचिन्तनाच्च कार्याणां ध्रुवं सन्तर्पणेन च।
स्वप्नप्रसंङ्गाच्च नरो वराह इव पुष्यति।।
च.सू. २१/३४

उपरोक्त सूत्र के अनुसार जो व्यक्ति किसी भी बात की चिन्ता नहीं करता, प्रतिदिन एवं नियमित रुप से योग्य निद्रा के साथ संतर्पण द्रव्यों का प्रयोग करता है, वह अत्यधिक प्रमाण में पुष्ट होता है, जैसे ग्रंथकारोंने 'वराह इव पुष्यति' इन शब्दों में वर्णित किया है।

क्या यह सोचना जरुरी नहीं ?

प्राय: ऐसा समझा जाता है कि जो व्यक्ति मोटे या अत्यधिक मोटे होते हैं वह सभी के नजर में हंसी मजाक का विषय बन जाते हैं। लेकिन कई बार दिखाई देता है, कि अतिकृश व्यक्तियों की भी यही अवस्था होती है। प्राय: अतिकृश व्यक्ति की हड्डियाँ अधिक स्थूल दिखने लगती हैं और उसी कारण उनका व्यक्तित्व बाह्यत: हंसी मजाक बनता है। लेकिन क्या यह जरुरी नहीं कि ऐसे व्यक्तियों की चिकित्सा करते समय सबसे पहले – उस व्यक्ति को यदि भस्मक तो नहीं हुआ है? यह परीक्षण करना आवश्यक होता है। तो ऐसे पदार्थों का सेवन करने की सलाह दें जो पदार्थ मांस पुष्टिकर हो। अतिकृश व्यक्तियों में मेद के साथ ही प्राय: मासंपेशियों का स्थितिस्थापकत्व भी कमी हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उन्हें न केवल ताकद की जरुरी होती है बल्कि स्निग्ध पदार्थों का उचित तथा अधिक सेवन करना अनिवार्य माना जाना चाहिए। अर्थात् जाठराग्नि तथा विशेषत: मांस एवं मेद धात्वग्नि की चिकित्सा करना आवश्यक नहीं है?

साथ ही नारायण तैल जैसे बल्य कार्य करनेवाले स्नेह द्रव्यों का नियमित अभ्यंग करने की सलाह देना क्या जरुरी नहीं? क्या यह भी सोचना जरुरी नहीं की माष तैल जैसे अन्य कल्पों का प्रयोग भी उचित साबित हो सकता है? स्थौल्य के समान या उससे कई ज्यादा संख्या में पाए जानेवाले 'कार्श्य' इस व्याधि की चिकित्सा भी उतनी ही आवश्यक है, यह सोचना तथा उसके प्रति वैद्य होने के नाते हमारा कर्तव्य है, क्या यह सोचना जरुरी नहीं?

धूतपापेश्वर
१८७२ से आयुर्वेद सेवा

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
स्वास्थ्य सेवा विभाग
श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई- ४०० ००४.
फोन : ९१-२२-३००३ ६३०० फॅक्स :९१-२२-२३८८ १३०८
ई-मेल : healthcare@sdlindia.com
वेब साईट : www.sdlindia.com

केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिये
© All Copy Rights Reserved

AMP-H/SDL-VR/JULY/S/1017